पठन स्तर ४

लाइट्स... कैमरा... ऐक्शन! दादा साहब फाल्के के जीवनकाल की एक झलक

Author: Rupali Bhave
Illustrator: Sunayana Nair Kanjilal
Translator: Deepa Tripathi
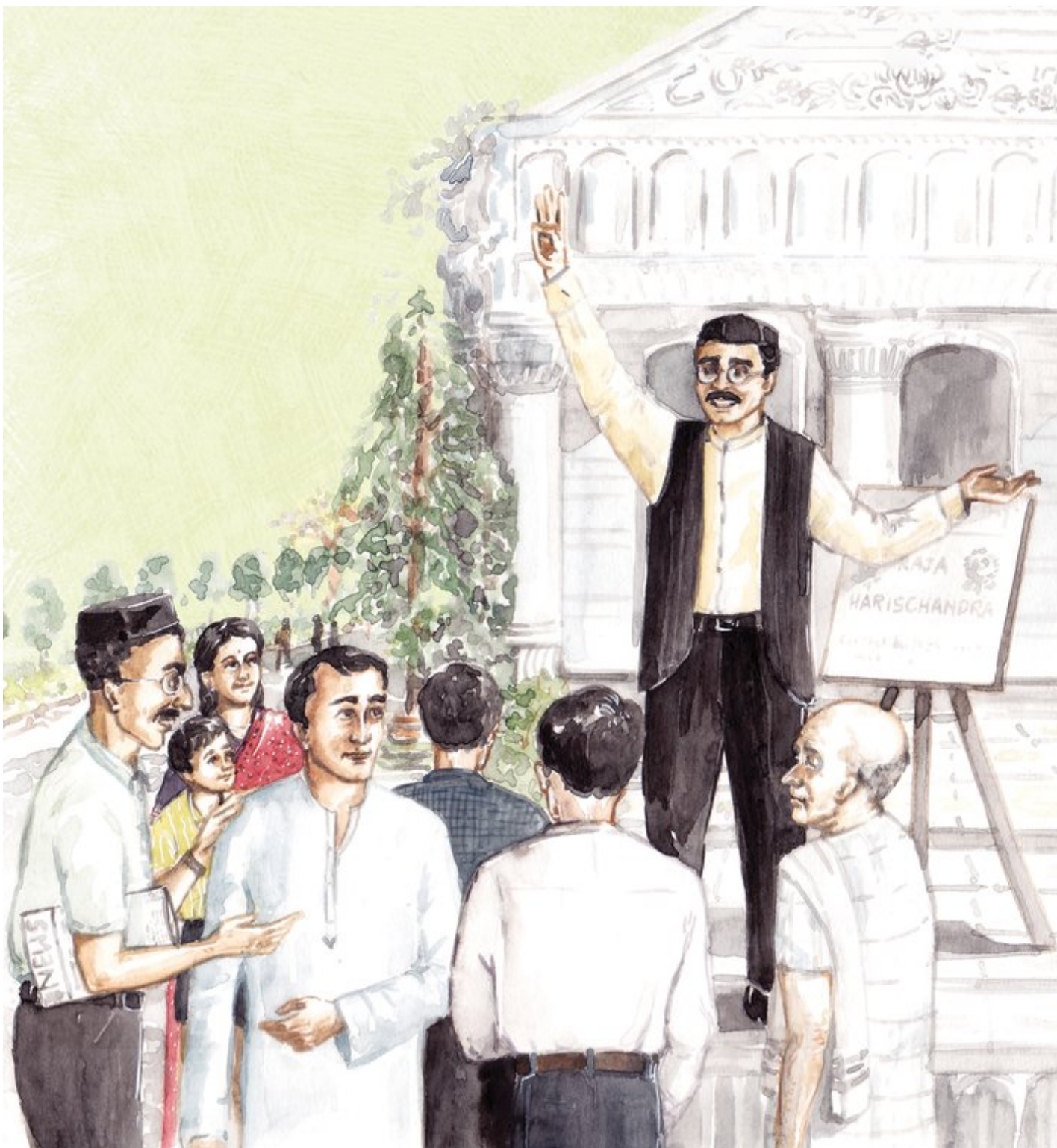
"आइये, आइये, आइये! सभी का स्वागत है! सत्तावन हज़ार तस्वीरों वाला तमाशा देखिये! सिर्फ़ तीन आने में!"

"तिलिस्मी तस्वीरों में लोगों को चलता-फिरता देखिये! तस्वीरों का दो मील लम्बा सिलसिला! सिर्फ़ तीन आने में!"

मुम्बई के कॉरोनेशन थियेटर के बाहर एक आदमी इस तरह चिल्ला-चिल्ला कर आने-जाने वालों को बुला रहा था। यह बात है 3 मई, 1913 की। ज़्यादातर लोग उसे सिरफिरा समझ कर उसकी बात पर ध्यान दिये बिना चले जा रहे थे, कुछ उसे शक की निगाहों से देख रहे थे। लेकिन चंद लोग उसकी बात सुनकर और ज़्यादा जानने के लिए उसे घेर कर खड़े हो गये थे।

“अरे, किस चीज़ के बारे में बात कर रहा है?” तमाशबीनों में से एक बोला।

“आज राजा हरिश्चंद्र रिलीज़ हुई है... यह एक फ़िल्म है!” उस आदमी ने जोश के साथ जवाब दिया।

“फ़िल्म? यह क्या होता है? क्या कुछ नाटक-वाटक जैसा होता है?” तमाशबीन ने पूछा।

“कुछ उसी की तरह होता है, लेकिन उसमें लोग नहीं, तस्वीरें चलती-फिरती दिखाई देती हैं। आपको राजा हरिश्चंद्र की कहानी दिखाई जाएगी। देखना चाहते हैं आप? सिर्फ़ तीन आने का टिकट है।” उस आदमी ने बताया।

कुछ पल आपस में सलाह-मशविरा करने के बाद इकट्ठे लोगों में से कुछ ने तय किया कि उन्हें देखना चाहिए कि आख़िर यह 'फ़िल्म' होता क्या है।

इस तरह तीन आने का टिकट ख़रीदने वाले वह लोग भारत की पहली मूक फ़िल्म 'राजा हरिश्चंद्र' देखने वाले पहले दर्शक बने। चलती-फिरती तस्वीरों वाली लेकिन बिना 'डायलॉग' वाली इस फ़िल्म को बनाने वाले और कोई नहीं, दादासाहब फाल्के थे।

ढुंडीराज गोविंद फाल्के, जो आमतौर पर दादासाहब फाल्के के नाम से जाने जाते थे, एक फ़ोटोग्राफ़र यानी छायाकार और जादूगर थे, जिन्होंने चित्रकला, मूर्तिकला, नाट्यकला और वास्तुकला भी सीखी थी। वह हमेशा कुछ न कुछ नया और सृजनात्मक काम किया करते थे।

एक दिन दादासाहब फाल्के 'द लाइफ़ ऑफ़ क्राइस्ट' देखने गये। उन्होंने पर्दे पर जो देखा उससे वह मंत्रमुग्ध हो गये। उन्हें वह एक जादुई सा अनुभव लगा। वह ख़ुद छायाकार थे। इसके बावजूद वह उनके लिए एक बिलकुल नया अनुभव था।

वह घर लौटे और अपना अनुभव अपनी पत्नी सरस्वती के साथ साझा किया।

“सरस्वती,” वह बोले, “मैं तस्वीरों में एक पल कैद करता हूँ, लेकिन वहाँ तो चलती-फिरती तस्वीरें थीं! लोग जीते-जागते लोगों की तरह चलते-फिरते दिखाई दे रहे थे। मुझ पर तो ऐसा असर हुआ कि मैंने दूसरा शो भी देख डाला।”

सरस्वती मुस्करा दीं। वह बहुत अच्छी तरह जानती थीं कि उनके पति के मन में बच्चों जैसा उत्साह रहता है।

“तुम्हें पता है, मैं ख़ुद सीखने जा रहा हूँ कि यह चलती-फिरती तस्वीरें कैसे बनायी जाती हैं। मैं हिंदुस्तान में फ़िल्में बनाऊँगा, और फ़िल्मों के ज़रिये हिंदुस्तानी कहानियाँ लोगों तक पहुँचाऊँगा,” उन्होंने ऐसे अंदाज़ में कहा जैसे ऐलान कर रहे हों।

हालाँकि दादासाहब जो भी काम करते थे उसे पूरे जोश और लगन के साथ करते थे, लेकिन रोज़गार के मामले में वह बहुत कामयाब नहीं थे। इसलिए कुछ लोग उन्हें सिरफिरा समझते थे। लेकिन उनकी पत्नी उनकी काबिलीयत और लगन की क़ायल थीं। उन्हें अपने पति पर गर्व था। आर्थिक तंगी के दौर में भी वह अडिग चट्टान की तरह उनके साथ डटी रहीं। फ़िल्म बनाने के इरादे में भी सरस्वती ने उनका साथ देने का फ़ैसला किया।

फ़िल्में बनाने से पहले दादासाहब फाल्के गोधरा में एक फ़ोटो स्टूडियो चलाते थे। लेकिन उन्हें जल्दी ही अपना स्टूडियो बंद करना पड़ा। मालूम है क्यों? क्योंकि उस दौर में बहुत लोग मानते थे कि जब कभी कैमरे से किसी की तस्वीर ली जाती है, तब कैमरा उसकी आत्मा भी निकाल लेता है। इसलिए बहुत कम लोग ही फ़ोटो खिंचवाते थे।

“इंग्लैंड जाने के लिए जितनी रक़म की ज़रूरत है, उतनी मेरे पास नहीं है, सरस्वती।” दादासाहब ने अपनी बेबसी ज़ाहिर की।

“परेशान मत हो। घर की कुछ चीज़ें बेच दो। इनके बिना भी हमारा काम चल सकता है।” सरस्वती ने कहा।

इस तरह, हर हाल में साथ देने वाली अपनी पत्नी की मदद से दादासाहब फाल्के ने अपनी सारी बचत को निकाला, घर की कुछ चीज़ों को बेच कर रक़म जुटायी, और 1912 में इंग्लैंड गये। उनके कुछ दोस्तों को लग रहा था कि उनका दिमाग़ फिर गया है। फ़िल्म बनाने का हुनर उन्होंने ब्रिटेन के अग्रणी फ़िल्मकार सेसिल हेपवर्थ से सीखा।

फ़िल्म बनाने से जुड़ी तमाम ज़रूरी बातों को अच्छी तरह समझने के लिए दादासाहब फाल्के ने लगातार देर-देर तक काम किया, जिससे उनकी सेहत पर बुरा असर पड़ा। एक समय ऐसा आया जब उन्हें दिखाई देना बंद हो गया। लेकिन, तब उन्हें बहुत राहत मिली जब कुछ समय बाद उनकी आँखों की रौशनी लौट आयी। कैसी अजीब परेशानी वाली बात थी, न? एक आदमी जो फ़िल्में बनाने के लिए इतना बेचैन हो, और उसकी आँखों की रोशनी चली जाये, जो कि किसी भी फ़िल्मकार के लिए सबसे ज़रूरी चीज़ों में से एक है!

जब वह भारत लौटे, तो कुछ कर गुज़रने को बेचैन थे। वह एक फ़िल्म बनाना चाहते थे। उन्होंने अपने इरादे बड़े उत्साह के साथ अपने परिवार वालों और दोस्तों के सामने रखे। लेकिन उनके कुछ दोस्तों को यही लगा कि उनका सिर फिर गया है। यहाँ तक कि इन दोस्तों ने उन्हें एक पागलखाने में भर्ती करवाने की कोशिश तक कर डाली! और इस बार भी सिर्फ़ उनकी पत्नी ने उनका साथ दिया।

अपने दोस्तों के ऐसे रवैये के बावजूद दादासाहब फाल्के ने ठान लिया कि उन्हें फ़िल्म बनानी ही है। वह फ़िल्म बनाने के लिए ज़रूरी रक़म जुटाने के इरादे से दोस्तों के चक्कर काटने लगे। लेकिन कोई उनके ऊपर भरोसा करने को राज़ी नहीं था। उफ़! ऐसा लगने लगा जैसे उनका सपना पूरा नहीं हो सकेगा।

लेकिन वह भी हार मानने वाले नहीं थे। उन्होंने अपनी जीवन बीमा की पालिसी पर कर्ज़ लिया और सरस्वती ने अपने गहने बेचकर फ़िल्म के लिए रक़म जुटायी। उस रक़म से उन्होंने जर्मनी से एक कैमरा और कुछ दूसरी चीज़ें मँगवायीं, लेकिन फ़िल्म बनाने के लिए और रक़म की ज़रूरत थी।

इसलिए, फ़िल्म बनाने में पैसा लगाने वालों को यह समझाने के इरादे से कि फ़िल्म का देखने वालों पर कैसा असर हो सकता है, उन्होंने मटर का एक दाना बोया और अंकुर फूटने से लेकर पूरी बेल पनपने तक थोड़े-थोड़े समय के बाद उसकी तस्वीरें लेकर एक छोटी सी फ़िल्म बनायी- ग्रोथ ऑफ़ ए पी प्लांट! इस छोटी सी फ़िल्म ने पैसा लगाने वालों पर अपना असर दिखाया और उन्हें कुछ कर्ज़ मिल गया।

वह पूरी लगन से अपनी पहली फ़िल्म बनाने की तैयारी करने में लग गये, लेकिन अब वह यह नहीं तय कर पा रहे थे कि किस विषय पर फ़िल्म बनायी जाये। परिवार के लोग इस मुद्दे पर ज़ोरदार बहस करते कि फ़िल्म बनाने के लिए कौन सी कहानी चुननी चाहिए। सरस्वती किसी कहानी पर फ़िल्म बनाने का सुझाव देतीं, तो वह कोई न कोई वजह बता कर उनकी बात मानने से इनकार कर देते। वह कोई कहानी सुझाते तो बच्चे उनकी बात को खारिज कर देते। ऐसा काफ़ी समय तक चलता रहा, तब कहीं उस कहानी पर ध्यान गया जिसकी उन्हें तलाश थी। और, उन्होंने तय कर लिया कि राजा हरिश्चंद्र पर फ़िल्म बनानी है।

“भारत के दर्शकों को यह पौराणिक कथा ज़रूर पसंद आएगी, क्योंकि यहाँ के लोगों की धर्म में भारी आस्था है। मैं उसमें वह सब डाल सकता हूँ जिससे रहस्य और जादू का सा असर उभर कर आए। मुझे मालूम है कि यह सब कैसे करना है! मैं इस कहानी के बारे में जितना सोचता हूँ, इस पर फ़िल्म बनाने की बात मुझे उतनी ही भा रही है,” उन्होंने पत्नी और बच्चों से कहा।

दादासाहब को चित्रकारी की गहरी समझ थी। वह महान चित्रकार राजा रवि वर्मा की कला से बहुत प्रभावित थे। वह ख़ुद भी चित्रकारी करते थे। मशहूर जे जे स्कूल ऑफ़ आर्ट्स में उन्होंने चित्रकारी की पढ़ाई की थी। अपनी फिल्म में दृश्य बेहतर बनाने के लिए उन्होंने चित्रकारी की अपनी समझ और महारत को बख़ूबी इस्तेमाल किया। इससे फ़िल्म के दृश्य और भी ज़्यादा असरदार बन सके।

“लेकिन आपको फ़िल्म के लिए अभिनेता कहाँ मिलेंगे? और कैमरा कौन चलाएगा?” सरस्वती ने पूछा। उसे इन बातों की चिंता सता रही थी।

“तुम! कैमरा तुम चलाओगी। मैं तुम्हें सिखा दूँगा। और फ़िल्म में काम करने वाले कलाकारों के लिए हम अख़बार में विज्ञापन देंगे। चलो, यह तय रहा।” दादासाहब ने कहा।

लेकिन यह सब कहना जितना आसान था, उतना ही कठिन था ऐसा करना! दादासाहब को फ़िल्म में काम करने के लिए ज़्यादा कलाकार नहीं मिले। उस ज़माने में अभिनय करना निचले दर्जे का काम माना जाता था। लोग नाटक-तमाशे में काम करने में शर्मिंदगी महसूस करते थे।

सबसे ज़्यादा मुश्किल का सामना तो तब करना पड़ा जब फ़िल्म में महिला पात्रों की भूमिका निभाने के लिए महिलाओं की ज़रूरत पड़ी। महिलाओं का अभिनय करना बुरा माना जाता था। उनकी फ़िल्म में काम करने के लिए एक भी महिला राज़ी नहीं हुई तब उन्होंने मर्दों को औरतों की भूमिका में उतार कर इस मुश्किल का हल निकाला। लेकिन उनके मन में था कि नायिका की भूमिका तो कोई महिला कलाकार ही करे। उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था। अचानक उन्हें एक विचार आया।

वह अपनी पत्नी से बोले, “सरस्वती, मैंने फ़ैसला किया है कि तुम नायिका की भूमिका करोगी।”

लेकिन सरस्वती ने साफ़ इनकार कर दिया, “मेरे पास करने के लिए पहले से ही बहुत सारे काम हैं! अगर मैं अभिनय भी करूँगी, तो वह सारे काम कौन करेगा जो अभी मेरे हिस्से में हैं? मैं फ़िल्म में अभिनय नहीं करुँगी।”

आख़िरकार, दादासाहब ने नायिका का अभिनय करने के लिए एक पुरुष को लिया, जो एक रेस्तराँ में रसोइये का काम करता था।

भारत के पहले फ़िल्म संपादक के तौर पर दादासाहब फाल्के की पत्नी सरस्वतीबाई फाल्के का नाम लिया जाता है। वह न सिर्फ़ अपने नौ बच्चों के परिवार की देखरेख करती थीं, बल्कि फ़िल्म बनाने में लगे सभी 60-70 लोगों के लिए खाना भी ख़ुद ही बनाती थीं। वही शूटिंग के समय 'लाइट रिफ़्लेक्टर' के तौर पर सफ़ेद पलंगपोश तान कर खड़ी रहती थीं, फ़िल्म को 'डेवलप' करने के लिए केमिकल के घोल तैयार करती थीं, रात को अँधेरे में फ़िल्म की पट्टियों के दोनों ओर सुराख करती थीं, और फ़िल्म धुलने के बाद उसकी 'एडिटिंग' यानी संपादन भी करती थीं।

इस फ़िल्म को बनाने में दादासाहब फाल्के का पूरा परिवार लग गया था। राजा हरिश्चंद्र के बेटे की भूमिका उनके अपने बेटे ने की थी। बाद में, अपनी फ़िल्म 'श्रीकृष्ण जन्म' और 'कालीया मर्दन' में उन्होंने अपनी बेटी मंदाकिनी को भगवान कृष्ण की भूमिका में लिया। दोनों ही फ़िल्म बहुत 'हिट' हुई थीं यानी उन्हें बहुत सफलता मिली थी।

जब ‘राजा हरिश्चंद्र’ बन रही थी तब कई मज़ेदार और यादगार घटनाएँ घटीं।
एक दिन एक कलाकार दादासाहब के पास आया और बोला, “दादासाहब, मैं जा रहा हूँ।”

“मैं फ़िल्म में काम नहीं कर सकता।”

“लेकिन क्यों?” दादासाहब ने पूछा।

“मेरे माता-पिता नहीं चाहते कि मैं फ़िल्म में कोई किरदार निभाऊँ। उनका कहना है कि चाहे मैं घर बैठूँ और कुछ भी न करूँ, लेकिन वह मुझे फ़िल्म में काम करने की इजाज़त नहीं दे सकते। उनका कहना है कि अगर यह ख़बर फैल गयी तो कोई लड़की मुझसे शादी नहीं करेगी!” उस कलाकार ने अपनी बात कही और वहाँ से चला गया।

दादासाहब समझ गये कि दूसरे कलाकार भी इसी बात को लेकर उनके पास आएँगे। उन्हें इसकी काट का बढ़िया तरीका सूझा। उन्होंने अपनी फ़िल्म में काम कर रहे सभी अभिनेताओं और दूसरे कर्मचारियों से कहा कि वह अपने परिवार वालों को फ़िल्म में काम करने की बात के बजाय यह बताएँ कि वह फाल्के की ‘फ़ैक्टरी’ यानी कारखाने में काम करते हैं।

जब शूटिंग नहीं हो रही होती थी, तब भी दादासाहब फाल्के अपने पुरुष कलाकारों को महिलाओं की वेशभूषा में रखते थे, ताकि वह महिलाओं की भूमिकाएँ बेहतर ढंग से कर सकें। उनसे खाना बनवाने, कपड़े धुलवाने और सफ़ाई करवाने जैसे घरेलू काम करवाये जाते थे, जो कि ज़्यादातर उस समय महिलाएँ ही करती थीं। कलाकारों को कितना मज़ा आता होगा ऐसा करने में!

फ़िल्म जगत में पहली बार होने वाली कई बातों के साथ दादासाहब फाल्के का नाम जुड़ा है। उन्होंने पहली भारतीय मूक फ़िल्म बनायी। उनकी पत्नी सरस्वतीबाई पहली भारतीय फ़िल्म एडिटर यानी संपादक थीं। उनके सबसे बड़े बेटे भालचंद्र 'राजा हरिश्चंद्र' में काम करके पहले भारतीय बाल कलाकार बने। उन्होंने भारतीय फ़िल्म जगत में पहली बार महिला कलाकार से अभिनय करवाया। उनकी बेटी मंदाकिनी फिल्मों में काम करने वाली भारत की पहली बाल अभिनेत्री बनीं।
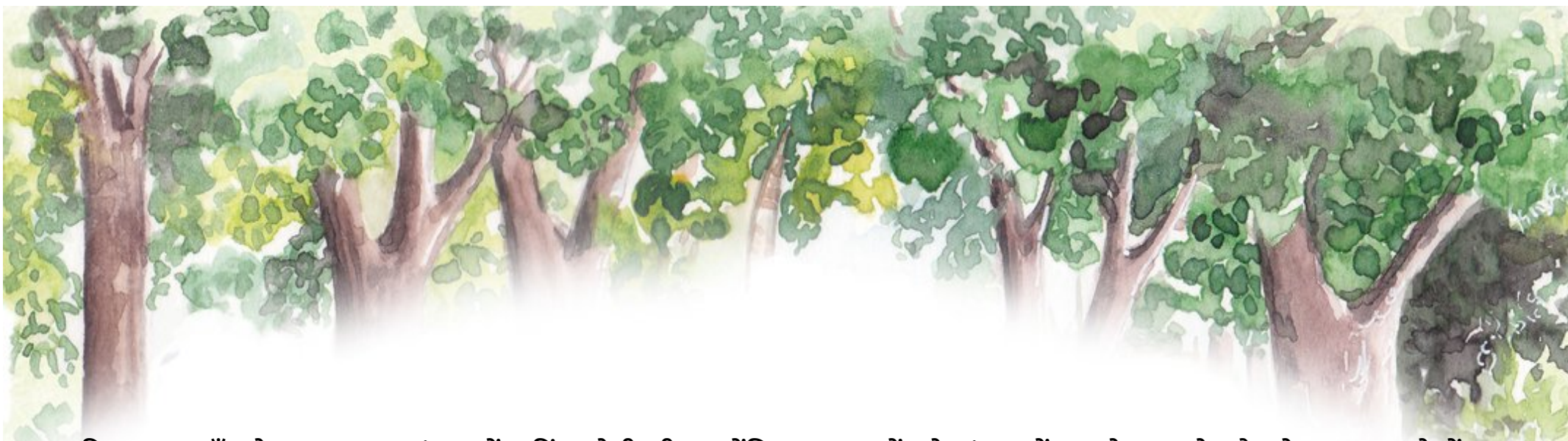
एक दिन, एक गाँव के पास, एक जंगल में शूटिंग होनी थी। क्योंकि कलाकारों को जंगल में कपड़े बदलने और मेकअप करने में दिक्कत होती, इसलिए दादासाहब ने तय किया कि सभी कलाकार अपने-अपने किरदार के मुताबिक कपड़े पहन, अपना-अपना साज़ोसामान लेकर उस जगह पहुँचें जहाँ शूटिंग होनी तय थी। क्योंकि फ़िल्म एक राजा की कहानी पर आधारित थी, ज़ाहिर है कुछ कलाकार तलवारें लेकर चल रहे थे। जंगल की तरफ़ जाते हुए जब वह गाँव से होते हुए निकल रहे थे तो गाँव वालों ने उन्हें डाकू समझ लिया और उन्हें पकड़ने के लिए पुलिस को बुला लिया!
तमाम उतार-चढ़ाव वाले लंबे सफ़र के बाद, आख़िरकार 1913 में दादासाहब फाल्के की बनायी फ़िल्म 'राजा हरिश्चंद्र' दर्शकों के सामने आयी। वह ख़ुद ही इस फ़िल्म के निर्माता, निर्देशक और लेखक थे। इस तरह, अंत में वह अपने प्रयास में सफल हुए।

फ़िल्म थियेटर में आयी तो पहले दो-तीन दिन कोई अच्छा कारोबार नहीं हुआ। वहाँ भी फाल्के की कभी हार न मानने की फ़ितरत काम आयी। शुरुआत के कुछ दिनों के लिए उन्होंने दो यूरोपीय लड़कियों को बुलवा लिया जो फ़िल्म शुरू होने से पहले दर्शकों के सामने नृत्य करती थीं। साथ ही, फ़िल्म के टिकट ख़रीदने वालों को इनाम भी दिये जाते थे। इस तरह अंग्रेज़ लड़कियों का नाच देखने के लिए लोगों की भीड़ लग जाती और जब लोग फ़िल्म देखने के बाद थियेटर से निकलते थे, तब वह फ़िल्म के जादू में बँध चुके होते थे।
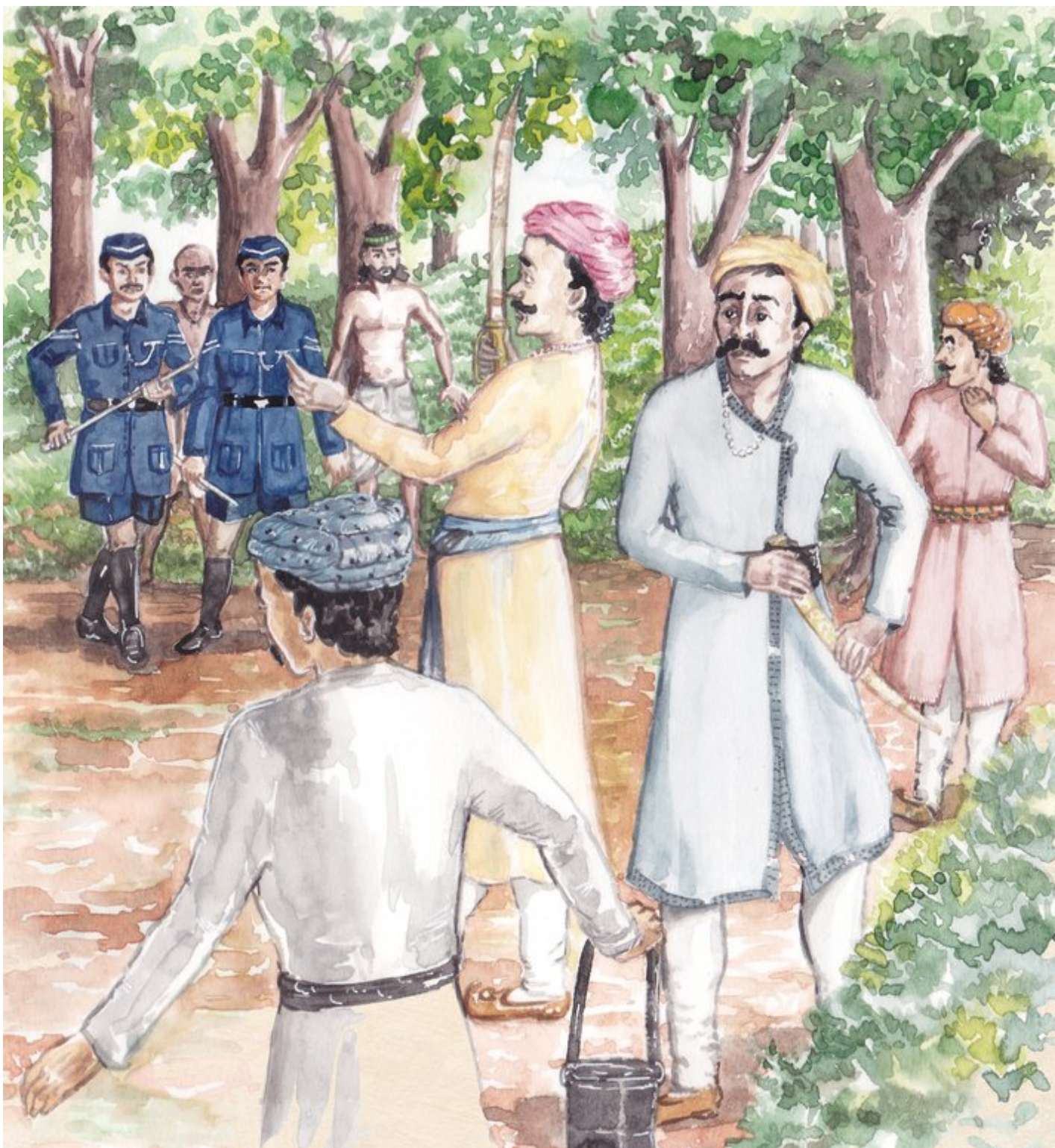
यह लोग दूसरों को फ़िल्म के बारे में बताते, और इस तरह दिन पर दिन पहले से भी ज़्यादा लोग फ़िल्म देखने आने लगे। फ़िल्म हिट हो गयी। न सिर्फ़ दादासाहब की अपनी लागत वसूल हुई, बल्कि फ़िल्म के लिए कर्ज़ देने वालों की रक़म चुकाने के बाद उन्हें अच्छा मुनाफ़ा भी हुआ। इस तरह, 'राजा हरिश्चंद्र' ने इतिहास रच डाला।

इस फ़िल्म के साथ शुरुआत हुई 19 साल के एक कामयाब सफ़र की, जिस दौरान दादासाहब फाल्के ने 95 फ़िल्में और 26 लघुफ़िल्में बनायीं। उनकी मेहनत और लगन की बदौलत 1920 में ही अब मुंबई के नाम से जानी जाने वाली मुम्बई नगरी में एक फ़िल्म उद्योग फलने-फूलने लगा था।

आज फ़िल्म सृजनात्मक सोच की अभिव्यक्ति का माध्यम है। हम भारतीय कथानकों पर आधारित और भारतीय कलाकारों को लेकर बनी फ़िल्मों का मज़ा लेते हैं। इनमें से ज़्यादातर भारतियों की बनायी हुई होती हैं। फ़िल्मों का कारोबार लगातार बढ़ता जा रहा है जिसके ज़रिये हज़ारों लोगों को रोज़गार मिल रहा है। इस सब के लिए हम जिस एक इंसान की मेधावी सोच और दूरदृष्टि के कर्ज़दार हैं उनका नाम है– दादासाहब फाल्के।

‘दादासाहब फाल्के पुरस्कार’ सिनेमा जगत का सर्वोच्च भारतीय पुरस्कार है। फ़िल्म जगत में दादासाहब फाल्के के योगदान को याद करने के लिए यह पुरस्कार भारत सरकार ने 1969 में शुरू किया था। 1972 में उनके सम्मान में भारतीय डाक ने उनकी तस्वीर वाला एक डाक टिकट जारी किया था। जहाँ ज़्यादातर फ़िल्मों की शूटिंग होती है, मुंबई की उस फ़िल्म सिटी का नाम भी उन्हीं के नाम पर ‘दादासाहब फाल्के चित्रनगरी’ रखा गया है।

दादासाहब फाल्के वास्तव में ‘भारतीय सिनेमा के जनक’ हैं।

Story Attribution:

This story: लाइट्स... कैमरा... ऐक्शन! दादा साहब फाल्के के जीवनकाल की एक झलकis translated by Deepa Tripathi . The © for this translation lies with Pratham Books, 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license. Based on Original story: 'LIGHTS... CAMERA... ACTION! The life and times of Dadasaheb Phalke', by Rupali Bhave . © Pratham Books , 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license.

Other Credits:

This story has been published on Storyweaver by Pratham Books. The development of this book has been supported by P.A.N.I Foundation. www.prathambooks.org

Images Attributions:

Cover page: Fim strip, by Sunayana Nair Kanjilal © Pratham Books, 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license. Page 2: Lecture, by Sunayana Nair Kanjilal © Pratham Books, 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license. Page 3: Patches, by Sunayana Nair Kanjilal © Pratham Books, 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license. Page 4: Clock, by Sunayana Nair Kanjilal © Pratham Books, 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license. Page 5: Man and woman, by Sunayana Nair Kanjilal © Pratham Books, 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license. Page 6: Walking away, by Sunayana Nair Kanjilal © Pratham Books, 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license. Page 7: Photographed, by Sunayana Nair Kanjilal © Pratham Books, 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license. Page 8: Pink film strip, by Sunayana Nair Kanjilal © Pratham Books, 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license. Page 9: Film Making, by Sunayana Nair Kanjilal © Pratham Books, 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license. Page 10: Projection, by Sunayana Nair Kanjilal © Pratham Books, 2016. Some rights reserved. Released under CC BY 4.0 license.

लाइट्स... कैमरा... ऐक्शन! दादा साहब फाल्के के जीवनकाल की एक झलक

(Hindi)

“तिलिस्मी तस्वीरों में लोगों को चलता-फिरता देखिए! तस्वीर जो है दो मील लंबी! सिर्फ़ तीन आने में!” इस तरह दादासाहब फाल्के नाम के एक जादूगर ने सड़क चलते लोगों को अपनी पहली फ़िल्म देखने के लिए रोक-रोक कर बुलाया था। भारतीय सिनेमा के जनक दादासाहब फाल्के की इस हैरतअंगेज़ कहानी के किरदारों में शामिल है रसोईया जिसने एक महिला का किरदार निभाया, और भारतीय फ़िल्म जगत की पहली महिला एडिटर जो दादासाहब की पत्नी थीं! अगर आपको सुपर-हिट फ़िल्में पसंद हैं तो आपको यह कहानी ज़रूर पसंद आएगी जिसमें फ़िल्म उद्योग की नींव रखने वाले की ज़िंदग़ी और उनकी पहली फ़िल्म की दास्तान दर्ज है। इसमें बातें हैं उस दौर की जहाँ से शुरु हुआ– “लाइट्स...कैमरा...ऐक्शन!”

This is a Level 4 book for children who can read fluently and with confidence.